*Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education*
*Vol. XIV, Issue No. 2, January-2018, ISSN 2230-7540*

# बुद्ध की अनात्म दृष्टि

**Dimple Rani[1]* Dr. Nidhi Rastogi[2]**

[1] Research Scholar of OPJS University, Churu, Rajasthan

[2] Associate Professor, OPJS University, Churu, Rajasthan

***सार – भगवान बुद्ध अनात्मवादी थे। यह नैरात्म्यवाद ही उनका प्रमुख सिद्धान्त है। जिसकी पुष्टि के लिये उनका विशेष आग्रह था। आत्मा नाम की कोई नित्य वस्तु नहीं। आत्मा को परमार्थ रूप से जाने बिना ही अन्य दार्शनिक उसकी उपासना किया करते हैं। बुद्ध का कहना है कि यह बात तो वैसी ही है जैसे भवन की सत्ता को जाने बिना ही उस पर चढ़ने के लिये सोपान बनाना प्रारम्भ कर दे। जब आत्मा है ही नहीं तब उसके मंगल के लिये उद्योग क्या करना।1 भगवान बुद्ध आत्मतत्त्व की ओर बड़ी उपेक्षा दृष्टि से देखते थे। जैसे एक प्रौढ़ व्यक्ति खिलौनों को तुच्छ दृष्टि से देखता है, बुद्ध की दृष्टि भी आत्मा की ओर ऐसी ही थी। वे कहा करते थे कि हे भिक्षुओ। आत्मा को नित्य ध्रुव शाश्वत् कहना बालधर्म है।2***

***चार्वाक और बुद्ध के अनात्मवाद में थोड़ा अन्तर है। चार्वाक तो आत्मा को शरीर रूप ही मानते थे। शरीर ही आत्मा है शरीर से भिन्न आत्मा नहीं, ऐसा उनका मत है किन्तु बुद्ध आत्मा को नित्य ध्रुव और शाश्वत रूप में नहीं मानते थे। उनका मत आत्मा का परमार्थ रूप से निषेध करना था। व्यवहार में आत्मा का अस्तित्व वे स्वीकार करते थे। किन्तु आत्मा को आत्मा न कह कर पञ्चस्कन्ध कहते थे। उनका कहना था कि आत्मा एक नहीं है बल्कि वह मानस प्रवृत्तियों का एक संघात मात्र है।***

---------------------------------x---------------------------------

## 1. आत्मा के प्रतिषेध का कारण

जिज्ञासा होती है कि आत्म तत्त्व के प्रति बुद्ध का दृष्टिकोण इतना तिरस्कारपूर्ण क्यों था। जो आत्मा वेदों का, उपनिषदों का प्रधान प्रतिपाद्य विषय है उसके प्रति बुद्ध का इतना कठोर रवैया क्यों रहा? अन्वेषण करने पर इसका उत्तर हमें मिल जाता है।

बुद्ध कहते हैं कि संसार समस्त झंझटों और क्लेशों का मूल आत्मा को मानना ही है। आत्मा को मान लेने पर काम जागरित होता है। काम एक समुद्र है जिसका कोई अन्त नहीं।3 जितनी इसकी पूर्ति की जाती है यह अधिक-अधिक बढ़ता ही जाता है। सब प्राणियों को अपना आत्मा ही सबसे प्रिय है। प्रिय वस्तु की प्राप्ति के लिए और उसकी रक्षा के लिये इच्छा होती है और प्राणी उद्योग के चक्र में फंसता चला जाता है। भगवान बुद्ध ने सोचा कि क्यों न आत्मा के अस्तित्व को ही नकार दिया जाये। जब काम का आधार ही नहीं रहेगा तो काम कहां रहेगा। समस्त उद्योग आत्मा के लिये ही तो है। जब आत्मा ही नहीं रहेगा तो काम स्वयंमेव समाप्त हो जायेगा। काम मोक्ष का सबसे प्रबल शत्रु है। काम की महत्ता को वेद ने भी स्वीकार किया है। अथर्ववेद में कहा गया है कि ''काम ही सबसे पहले उत्पन्न हुआ। इसके रहस्य हो, तुम विश्व के घातक हो, तुम्हें प्रणाम है।''4 काम एक आग है जो समग्र प्राणियों के हृदयों को जलाता है।5 इसी काम का नाश करने के लिये बुद्ध ने तप किया और उससे विजित किया। काम को मार भी इसलिये कहा जाता है, क्योंकि वह मारक है- याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा था कि काम आत्मा के लिये है। आत्मा के ही काम के लिये सब प्रिय लगता है। (आत्मनस्तु वै कामाय सर्वप्रियं भवति) काम की जड़ आत्मा ही है।

काम के इस दुरुत्तर बल को देखकर बुद्ध ने काम का नाश करने के लिये आत्मा के अस्तित्व को ही छिन्न करने का संकल्प किया। अहंभाव आत्मा से ही तो आता है। आत्म सुख के लिये ही सब अनर्थ परम्परा प्रारम्भ होती है। काम का अस्तित्व आत्मा पर ही अवलम्बित है। अतः बुद्ध ने मूल पर ही प्रारम्भ किया। इस प्रकार बुद्ध अनात्मवादी हो गये।

नागार्जुन ने बौधिचर्यावतार में समस्त अनर्थों का मूल आत्मा को माना है। उन्होंने कहा है जो आत्मा को देखता है, उसका 'अहम्' से शाश्वत स्नेह हो जाता है। उस स्नेह से सुख के प्रति तृष्णा होती है। तृष्णा दोषों को ढक लेती है। गुण दर्शी पुरुष विषयों की प्राप्ति के लिये साधनों का संग्रह करता है। इस

प्रकार जब आत्मा के अस्तित्व में स्नेह रहता है तभी तक संसार रहता है। आत्मस्नेह से ही राग द्वेष उत्पन्न होते हैं और उसके बाद अन्य समस्त दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इन सबकी चिकित्सा यही है कि आत्मा में अभिनिवेश त्याग दिया जाये। यही कारण है कि बुद्ध ने नैरात्म्यवाद का प्रचार किया।

## 2. नैरात्म्यवाद क्या है?

नैरात्म्यवाद का यह अर्थ नहीं है कि आत्मा जैसा कोई तत्त्व नहीं। बल्कि इसका अर्थ यह है कि पदार्थों का कोई अपना आत्मा अर्थात् स्वरूप नहीं है। पदार्थ अनेक धर्मों का पुंज मात्र है। घट कोई पदार्थ नहीं। घट नाम है परमाणुओं के समूह का। अवयवों से पृथक् अवयवी कोई पदार्थ नहीं होता। अवयवी अवयव समूह ही होता है। न्याय दर्शन अवयवी को अवयवों से नूतन पदार्थ मानते हैं, किन्तु बौद्धों का मत इससे भिन्न है। इसी प्रकार अनात्मा का अर्थ यह है कि न्याय दर्शन आदि जिस रूप में आत्मा को मानते हैं, वैसा आत्मा नहीं है। आत्मा भी अनेक धर्मों का समूह है।

मिलिन्द प्रश्न में इसी प्रश्न को उठाया गया है। राजा मिलिन्द आत्मा का स्वरूप जानने के लिये रथ पर सवार होकर नागसेन के पास गये और उनसे पूछा कि आत्मा क्या है? नागसेन ने कहा कि आप यह बताइये कि जिस रथ पर सवार होकर आप आये हैं। वह रथ कहाँ है?

- क्या दण्ड रथ है?
- नहीं।
- क्या धुरे का नाम रथ है?
- नहीं।
- क्या चक्र रथ है?
- नहीं।
- तो क्या इन सबको मिलाकर रथ कहते हैं?
- नहीं।
- तो फिर रथ क्या है?
- मिलिन्द ने कहा कि हे भिन्नों इन सब अवयवों के आधार पर इन सबको व्यवहार के लिये रथ नाम दे दिया गया है।

नागसेन ने कहा- महाराज! आत्मा की भी यही दशा है। समस्त मानसिक विज्ञानों को मिलकर व्यवहार के लिये आत्मा नाम दे दिया गया है। आत्मा कुछ नहीं है।

## 3. आत्मा पंचस्कन्धात्मक है

बौद्ध दर्शन के अनुसार आत्मा स्कन्धात्मक अर्थात समूहात्मक है। यह समूह पांच तत्वों का है- ये पांच तत्व हैं- रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और संस्कार।6 इन्हीं पंच स्कन्धों का नाम जीव है।

रूप स्कन्ध: इन्द्रियों और विषयों को रूप कहते हैं। जिसके द्वारा विषय निरुपित होते हैं। वे इन्द्रियां रूप नाम से वाच्य हैं। जिनका निरुपण किया जाए वे विषय भी रूप कहलाते हैं।7 शरीर इन दोनों का ही नाम है। चक्षुरादि इन्द्रियां और उनके विषय आत्मा के प्रथम स्कन्ध है।

विज्ञान स्कन्ध: अहं की अनुभूति और रूपादि विषयों का ज्ञान विज्ञान स्कन्ध कहा जाता है। यह विज्ञान एक प्रवाह है, कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। एकता की प्रतीति भ्रांतिमूलक है। जिस प्रकार दीपशिक्षा क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न होते हुए भी 'यह वही है' ऐसी प्रतीति भ्रममूलक होती है। यह विज्ञान ही अन्य दर्शनों में जीव कहा जाता है। यह विज्ञान दो प्रकार का है- आलय विज्ञान और प्रवृत्ति विज्ञान। अहमाकरक ज्ञान आलय विज्ञान है। इसे बुद्धि या मन भी कहा जाता है। इसे आलय इसलिये कहते हैं यह धर्मो के बीजों का भण्डार है। चैत्त धर्म इसमें बीज रूप में अवस्थित रहते हैं और विज्ञान प्रवाह के रूप में बाहर निकलते हैं। प्रवृत्ति विज्ञान विषयों में प्रवृत्त होने वाला तथा पीतादि का उल्लेख करने वाला चित्त कहलाता है।8 यह प्रवृत्ति विज्ञान आलय विज्ञान से ही उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है। यह प्रवृत्ति विज्ञान सात प्रकार का है- 1. चक्षु विज्ञान, 2. स्रोत विज्ञान, 3. घ्रण विज्ञान, 4. जिह्वा विज्ञान, 5. काय विज्ञान, 6. मनो विज्ञान तथा 7. क्लिष्ट मनोविज्ञान।

लंकावतार सूत्र में आलय विज्ञान और प्रवृत्ति विज्ञान को समुद्र और तरंगों के दृष्टान्त से समझाया गया है। आलय विज्ञान एक समुद्र के समान है जिसमें विषय पवन से झकझोरने पर सात प्रकार के प्रवृत्ति विज्ञान रूपी तरंगें निरन्तर नृत्य किया करती हैं।

वेदना स्कन्ध: पूर्वोक्त रूप स्कन्ध और विज्ञान स्कन्ध के द्वारा जिन विषयों का ग्रहण किया जाता है, उससे सुख अथवा दुःख की अनुभूति होती है। प्रिय के स्पर्श से सुख और अप्रिय वस्तु के स्पर्श से दुःख होता है। सुख दुःख की इन प्रतीतियों का

प्रवाह वेदना स्कन्ध कहलाता है।9 दूसरे शब्दों में सुख दुःख के द्वारा चित्त का परिणाम ही वेदना है।

संज्ञा: वस्तुओं को अच्छी प्रकार जानकर उनसे सुख-दुःख की वेदना को ग्रहण करने के पश्चात् हम वस्तुों का कुछ नाम रखते हैं। गौ अश्व घट पट आदि नामों का ज्ञान संज्ञा कहलाता है। नैयायिक जिसे सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं जिसमें वस्तु के नाम जाति गुरप आदि का नाम होता है। बौद्ध दर्शन में उसे ही संज्ञा स्कन्ध कहा जाता है। विज्ञान और संज्ञा स्कन्ध में यही अन्तर है कि विज्ञा स्कन्ध तो अहं का विषयों का निर्विकल्पक ज्ञान मात्र है। उसके गुण, धर्म, जाति आदि का ज्ञान संज्ञा स्कन्ध में होता है।10

संस्कार स्कन्ध: उपर्युक्त चारों स्कन्धों के मन में राग या द्वेष का उदय होता है। उससे क्लेश उपक्लेश मद मनादि की लम्बी परम्परा प्रारम्भ हो जाती है। यही संस्कार स्कन्ध है। धर्माधर्म का प्रवाह भी संस्कार स्कन्ध के अंतर्गत ही आता है। अन्य भारतीय दर्शनों में पाप पुण्य रूप धर्माधर्म ही संस्कार कहलाते हैं। किन्तु बौद्ध मत में क्लेशों उपक्लेशों मदमान आदि को संस्कार माना गया है। इन संस्कारों का मुख्य जनक वेदना स्कन्ध ही है।11

ये पंच स्कन्ध ही बौद्ध दर्शन में आत्मा नाम से जाने जाते हैं। यह समूहात्मक आत्मा परिवर्तनशील है। क्षण-क्षण में बदलती रहती है। आत्मा ही क्यों, संसार की प्रत्येक वस्तु क्षणिक है। एक नल में हम दो बार स्नान नहीं करते। एक वस्त्र को हम दोबारा नहीं पहनते। किसी भी वस्तु को उसी रूप में हम प्रयोग में नहीं लाते। काल की गति बहुत तेज है। काल अपने साथ सब वस्तुओं को जीर्ण कर रहा है। ऐसी स्थिति में हम यह कैसे कह सकते हैं कि यह वही है। उज्जवल रंग रूप से समृद्ध बालक का सुन्दर शरीर युवावस्था के सोपान को पार करके एक दिन वृद्धावस्था की द्रष्टाओं में पड़कर इतना भद्दा और जरठ हो जाता है कि कोई देखना भी पसन्द नहीं करता। क्या यह परिवर्तन एक समय में इकट्ठा ही हो यगा? नहीं। यह परिवर्तन क्षण-क्षण में हुआ है। इसी प्रकार यह पंच स्कन्धात्मक जीव भी क्षणिक है।

## 4. आत्मा की क्षणिकता में पुनर्जन्म कैसे

प्रश्न उठता है कि यदि पंच व्यूहात्मक आत्मा क्षणिक है तो कर्म फल भोग के लिये पुनर्जन्म की व्यवस्था कैसे बनेगी? क्षणिकवाद के अनुसार तो कर्म भी क्षणिक ही हुए। कर्म यदि क्षणभर में नष्ट हो गया और कर्म करने वाला नष्ट हो गया तो फल किसे मिलेगा और कौन से कर्मो का मिलेगा। किये हुए कर्मो का फल तो मिलने से रहा। वे तो पूर्व क्षण में नष्ट हो गये। अब जो फल मिल रहा है वह अकृत कर्मो का ही फल होना चाहिए। इस प्रकांरकृत प्रणाश और अकृत कर्म भोग नाम का दोष आता है।

कर्मों के नाश हो जाने पर पुनर्जन्म भी नहीं बनता। पुनर्जन्म तो कृत कर्मों के फल भोग के लिये मिलता है। कर्म और कत्र्ता तो दोनों नष्ट हो चुके। फिर जन्म किस का और किस आधार पर होगा। संसार का ही उच्छेद हो जायेगा और फिर स्मृति भंग और मोह भंग भी गले पड़ जायेंगे। इसलिये हेमचन्द्र सूरि ने क्षणिकवाद का बहुत उपहास किया है।

सन्तानवाद: उपर्युक्त दोषों के परिहार के लिये बौद्धों ने सन्तान की कल्पना की है। बौद्धों का कहना है कि दो क्षणों में एकता नहीं होती किन्तु एकता प्रतीत होती है। इसका कारण है सन्तान। दीपक की प्रतिक्षण परिवर्तित होती हुई शिखा में एकता का मान सन्तान के कारण होता है। सन्तान का अर्थ है प्रवाह। इसका अभिप्राय यह है कि दो क्षणों के अन्तर नहीं होता। एक क्षण का लय होता है तो दूसरा तुरन्त उत्पन्न हो जाता है। प्रथम क्षण का विज्ञान उत्तरक्षण के सदृश ही होता है। इस सादृश्य से एकता की प्रतीति होती है। दूसरी बात यह है कि प्रथम क्षण का विज्ञान विनष्ट होने से पहले उत्तर क्षण को एक संस्कार या वासना दे जाता है। इसी से 'यह वही है' ऐसा भ्रम होता है। जीवात्मा की भी यही स्थिति है। पुनर्जन्म के समय वही जीव नहीं होता। एक जन्म के अन्तिम विज्ञान के लय होते हैं। दूसरे जन्म का विज्ञान उत्पन्न हो जाता है। कर्म प्रत्येक क्षण में नष्ट होते चले जाते हैं किन्तु उनकी वासना उत्तरक्षण में अनुस्यूत रहती है। जैसे नदी की धारा का प्रत्येक जलकण एक दूसरे से जुड़ा रहता है और अविच्छिन्न प्रवाह का रूप धारण कर लेता है और जल के भिन्न-भिन्न होते हुए भी एकता का भ्रम उत्पन्न करता है। वैसे ही विज्ञानों का प्रवाह अविच्छन्न रूप से परस्पर जुड़कर पुनर्जन्म को प्राप्त करता है। इसलिए विज्ञानों के क्षणिक होते हुए भी पुनर्जन्म की कल्पना उपयुक्त नहीं है।

## 5. बौद्ध-आत्मतत्व समीक्षा

भारतीय दर्शनों में बौद्ध-दर्शन को भी अनात्मवादी कहा गया है। वहाँ अनात्मवादी शब्द का अभिप्राय यह है कि एक तो वह विज्ञान आदि धर्मो से भिन्न किसी धर्मी की सत्ता को नहीं मानता, दूसरे विज्ञानादि को क्षणिक मानकर उनकी सन्तति को ही मानता है, इनसे भिन्न किसी नित्य आत्मा को स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः ये बातें आत्मा के स्वरूप से सम्बन्ध

रखती हैं, आत्मा की सत्ता से नहीं। इसलिये प्राचीन तथा अर्वाचीन विचारकों में से अनेकों का मत है कि बौद्ध अनात्मवादी नहीं है। दयानन्द भी स्पष्ट शब्दो में उसे आत्मवादी बतलाते हैं- ''बौद्ध-जैन प्रत्यक्षदिचारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति को भी मानते हैं।''12

स्वामी जी ने प्रसङ्गवश बौद्धों की उपर्युक्त दोनों मान्यताओं का खण्डन किया है। उन्होंने किस प्रकार क्षणिकवाद का निराकरण किया है, यह पूर्व ही प्रकृति प्रकरण में दिखलाया जा चुका है। यदि जीव क्षणिक हो तो पूर्वदृष्ट या श्रुत का स्मरण न हुआ करता, किन्तु स्मरण होता है, अतः जीव क्षणिक नहीं।13 जीव की क्षीणकता का निषेध करने दूसरी युक्ति स्वामी जी ने इस प्रकार दी है- ''जो क्षणिकवाद ही बौद्धों का मार्ग है तो इनका मोक्ष भी क्षणभङ्गुर होगा।''14 विज्ञानादि से भिन्न कोई आत्मा नहीं, इस मन्तव्य का स्वामी जी ने स्पष्टतः कहीं विरोधकिया हो, ऐसा ज्ञान नहीं होता। फिर भी उन्होंने बौद्ध मत का निराकरण करते हुए 'सब अवयवों में अवयवी एक है,'15 यह कहा है, जिससे स्पष्ट है कि वे बौद्ध के विरुद्ध धर्म-धर्मी का भेद सिद्ध करते हैं। अतः विज्ञान आदि से भिन्न कोई आत्मा नहीं है, इस मत का भी निराकरण हो जाता है। इसके अतिरिक्त दयानन्द ने स्थूल आदि शरीरों तथा अन्नमय आदि पंच कोशों का स्वरूप दिखलाकर यह स्पष्ट रूप से कहा है जीव इन सबसे पृथक् है- ''इन सब कोश, अवस्थाओं से जीव पृथक् है। .... क्योंकि जब मृत्यु होती है तो सब कोई कहता है कि जीव निकल गया। यही जीव सबका साक्षी, कत्र्ता, भोक्ता कहा जाता है।''16 अभिप्रायः यह है कि इस विषय में लौकिक तथा परीक्षक जन सहमत हैं और व्यवहार से यह भी विदित होता है कि शरीर आदि से भिन्न जीवात्मा नामक कोई तत्त्व है। कत्र्तव्य-भोक्तृत्व के आधार पर भी शरीर तथा विज्ञान से भिन्न आत्मा की सिद्धि आचार्यों ने की है। दयानन्द कहते हैं ''जो कोई ऐसा कहे कि जीव कत्र्ता भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है। क्योंकि बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनको सुख दुःख का भोग का पाप-पुण्य कत्र्तृव्य कभी नहीं हो सकता।''17

इसी प्रकार से स्वामी दयानन्द जी बौद्धों के निर्वाण की आलोचना करते हैं। बौद्धों के अनुसार आत्मा रूप, विज्ञान, वेदना, संस्कार व संज्ञा इन पांच स्कन्धों का संघात मात्र है। निर्वाण प्राप्त करने पर यह संघात समाप्त हो जाता है, इसी से बौद्ध दर्शन में निर्वाण का अर्थ बुझ जाना किया है। यदि निर्वाण की अवस्था में जीवात्मा का नाश हो जाता है तो निर्वाण का लाभ क्या? फिर निर्वाण में किसके दुःखों का नाश हुआ और कौन मुक्ति में आनन्द का भोग करेगा? बौद्धों के निर्वाण को हम दुःखों के स्थान पर जीव का उच्छेद कहें तो अच्छा रहेगा। बौद्धों का निर्वाण दुःखों का अभावमात्र होने से अभावात्मक है।18 स्वामी दयानन्द जी बौद्धों की मुक्ति के विषय में और भी लिखते हैं- ''जो क्षणिक वाद ही बौद्धों का मार्ग है तो उनका मोक्ष भी क्षणभङ्ग होगा।''19 अन्य ''जो वासना छेद ही मुक्ति है तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी चाहिये। ऐसा मानना विद्या से विरुद्ध होने के कारण तिरस्करणीय है।''20

इस प्रकार से स्वामी दयानन्द जी बौद्धों के अनात्मवाद का निराकरण करते हैं, इससे इतर भी बौद्धों के पंच स्कन्धात्मक मानना और उसे क्षणिक मानना दोनों सिद्धान्त लोकव्यवहार को विखण्डित करते हैं। आत्मा को क्षणिक मानने पर कर्मफल का सिद्धान्त किसी भी आधार पर टिक नहीं सकता। बौद्ध दार्शनिक क्षणों का निरन्वय विनाश मानते हैं अर्थात् प्रथम क्षण का उत्तर क्षण के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता। जब पूर्व क्षण नष्ट हो गया तो उत्तर क्षण के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। ऐसी स्थिति में कर्म का नाश हो जाने पर उसका आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। वह आत्मा भी क्षणिक ही है। इस प्रकार न कर्म का फल मिलेगा, न भोगने वाला रहेगा। मोक्ष की प्राप्ति के लिये विज्ञजन जो उपाय करते हैं उनका भी कोई प्रयोजन नहीं रह जायेगा।

बौद्ध दार्शनिक सन्तान या वासना को मानकर इस दोष का परिहार करते हैं किन्तु वह भी मूषिक-भक्षित बीजों के समान अकिंचित्कर है। वह वासना भी तो क्षणिक ही है, कर्म के साथ धर्म की वासना का भी नाश होगा। इस दशा में पुनर्जन्म किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होता। वासना का खण्डन करते हुए जैन दार्शनिक हेमचन्द्र सूरि कहते हैं कि वह वासना और वह क्षण परम्परा परस्पर भिन्न हैं या अभिन्न हैं? या दोनों ही नहीं हैं? यदि भिन्न हैं तो दोनों का सम्बन्ध नहीं बनता। अभिन्न हैं तो दोनों में से एक को मानना ही ठीक है। भिन्न-भिन्न से विलक्षण तीसरा विकल्प ही नहीं होता। बौद्ध दार्शनिक विज्ञान को सत् मानकर बाह्य वस्तु का आलाप करते हैं। यह मत भी उपहासास्पद है। बाह्य वस्तु के बिना ज्ञान निर्विषयक हो जायेगा। ज्ञान को मानना और विषय को स्वीकार न करना परस्पर विरुद्ध बात है।

जयन्त भट्ट ने बौद्धों के सिद्धान्त का उपहास करते हुये कहा है कि एक ओर तो बौद्ध कहते हैं कि न तो आत्मा है और न कर्मों का फल भोग है, दूसरी ओर स्वर्ग के लिये चैत्य (प्रतिभा) की पूजा की जाती है। संस्कारों को क्षणिक कहा जाता है और युगपर्यन्त स्थायी रहने वाले विहार बनाये जाते हैं। एक ओर कहते हैं कि सब कुछ शून्य है और दूसरे ओर गुरु को धन देने

का आदेश दिया जाता है। इस प्रकार बौद्धों का मत केवल पाखण्ड के अतिरिक्त कुछ नहीं।

बौद्धों का 'सर्व शून्यम्' का सिद्धान्त तो और भी अनर्थकारी है। यदि सब कुछ शून्य है तो प्रमाता भी शून्य है, प्रमाण और प्रदेश भी शून्य हैं। फिर यह सिद्धान्त स्थापन कौन किसके लिये कर रहा है। अपने पक्ष की सिद्धि भी नहीं की जा सकती, क्योंकि पक्ष भी शून्य है। हम पूछते हैं कि 'सर्व शून्यम्' इस पक्ष की सिद्धि के लिये कोई प्रमाण देते हो नहीं। यदि प्रमाण दिया जाता है तो वह यथार्थ ही होना चाहिए शून्य नहीं। तब तो शून्यवाद उच्छिन्न हो गया। यदि प्रमाण नहीं दिया जाता तब तो बिना प्रमाण के केवल बाङ्मात्र से पक्ष की सिद्धि नहीं हुआ करती। इस बात को हेमचन्द्र सूरि ने बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।21

इस प्रकार बौद्धों का आत्मसिद्धान्त पूर्ति कूष्काण्ड के समान त्याज्य है। पांच स्कन्धों को आत्मा का उपकरण तो माना जा सकता है आत्मा नहीं। अवयवी कभी निर्विकार नहीं रह सकता। उसमें विकार आयेगा। विकार आने पर वह अनित्य होगा और अनित्य होने पर कृत प्रणश, अकृतकर्मभोग, संसारोच्छेद, स्मृति भंग और मोक्षाभाव रूप दोष से कथापि बचा नहीं जा सकता। आत्मा को नित्य मानकर ही इन दोषों से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है।

## संदर्भ सूची:

1. दीर्घनिकाय, पृ. 73

2. अयं भिक्खवे। केवलो परिपुरो बाल धम्मो- मज्झिमनिकाय 1/1/2

3. समुद्र इण हि कामः, न हि कामस्यान्तो रित-तै. ब्राह्मण 1/1/5/6

4. काम जसे प्रथमं नैनं देवा आपुः पितरो नकत्र्याः

   ततस्त्वमसि ज्पापान् विश्वहा महांसतस्मै ते काम नम इत्कृणोमि- अथर्ववेद 9/2/19

5. यो देवोग्निः विश्वात् यं तु काममाहुः -अथर्व 3/2/1/4

6. सो यं चितचैतात्मकः स्कन्धः प चविधा रूप-

   विज्ञान वेदना संज्ञा संस्कार संराक-सं. द. स., पृ. 86

7. रूपयन्त एभिविषया इति रूपयन्त इति च व्युत्पत्या

   सविषयाणिन्द्रियाणि रूपस्कन्धः - तदेव, पृ. 87

8. तत्स्यादालय विज्ञानं यद्भवेदहमास्पदम्।

   तत्स्यात्प्रवृत्ति विज्ञानं पन्नीलादिक मुल्लिखेत्।। स.द.सं., पृ. 82

9. प्रागुक्तस्कन्ध द्वयसम्बन्ध जन्यः सुख दुःखादि प्रत्यय प्रवाहो वेदना स्कन्धः-

   स. द. सं., पृ. 87

10. गौरित्यादिशब्दोल्लेखि सवित्प्रवाहः संज्ञा स्कन्धः- स. द. सं., पृ. 87

    संज्ञा स्कन्ध सविकल्प प्रत्ययः संज्ञा संसर्ग योग्य प्रतिभासो। यथा

    डित्थः कुण्डली गौरो ब्राह्मणो गच्छतीत्येवं जातीयकः- भामती

11. वेदना स्कन्ध निबन्धना रागद्वेषादयः क्लेशा उपक्लेशाश्व

    मदमानाद्यो धर्माधर्मो च संस्कार स्कन्धः स. द. सं., पृ. 87

12. सत्यार्थ प्रकाश समु. 12, पृ. 385

13. वही, पृ. 387

14. वही, पृ. 326

15. वही, पृ. 387

16. वही, समु. 9, पृ. 230

17. सत्यार्थ प्रकाश, समु. 9, पृ. 230

18. सत्यार्थ प्रकाश, समु. 12, पृ. 386

19. वही, पृ. 391

20. वही, पृ. 391

21. बिना प्रमाणं परवन्न शून्यः

स्वपक्षसिद्धेः पदमश्नुवीत।

कुकप्येत्कृतान्तः स्पृशते प्रमाण-

महो सुदृष्टं त्वदसृमि दृष्टम्।।

अ॰ यो॰ व्य॰ द्वा॰

---

**Corresponding Author**

**Dimple Rani***

Research Scholar of OPJS University, Churu, Rajasthan